|| श्रीमद्भगवद्गीता विवेचन सारांश ||

अध्याय 16: दैवासुरसंपद्विभागयोग

2/2 (श्लोक 7-24), रविवार, 09 नवंबर 2025

विवेचक: गीता विशारद डॉ. संजय जी मालपाणी

यूट्यूब लिंक: https://youtu.be/onIqt2Zx8Uw

आसुरी गुणों का त्याग

गीता परिवार के स्फूर्ति-गीत, हनुमान-चालीसा पाठ व दीप प्रज्वलन के पश्चात् भगवान् श्रीकृष्ण और परम पूज्य स्वामी श्री गोविन्ददेव गिरिजी महाराज के चरण कमलों की वन्दना के साथ आज का सत्र प्रारम्भ हुआ।

इस अध्याय के चिन्तन में दैवीय सम्पदा के छब्बीस गुणों को हमने देखा। मनुष्य में दैवीय गुणों का प्राकट्य तभी होता है जब हम सद्गुरु से, श्रीभगवान् से जुड़ते है।

श्रीभगवान् के साथ जुड़ना अपने आप ही दैवीय गुण सम्पदा को अपने अन्दर प्रकट करना हो जाता है। बारहवें अध्याय में श्रीभगवान् ने भक्त के लक्षण बताए थे। अब छः आसुरी गुणों को विस्तार से श्रीभगवान् बता रहे हैं।

16.7

प्रवृत्तिं(ञ्) च निवृत्तिं(ञ्) च, जना न विदुरासुराः।
न शौचं(न्) नापि चाचारो, न सत्यं(न्) तेषु विद्यते।।16.7।।

आसुरी प्रकृति वाले मनुष्य किस में प्रवृत होना चाहिये और किससे निवृत्त होना चाहिये (इसको) नहीं जानते और उनमें न तो बाह्य शुद्धि, न श्रेष्ठ आचरण तथा न सत्य-पालन ही होता है।

विवेचन- तेरहवें अध्याय में श्रीभगवान् ने दैवीय गुण बताए है इसलिए इस अध्याय में आसुरी गुणों के बारे में भी बता रहे हैं।

हमें मानव योनि प्राप्त है, परमात्मा का अंश-रूप, आत्मा हमारे इस मानव देह में निवास करती है। मृत्यु उपरान्त यह आत्मा इस देह को धारण करना छोड़ देती है।

-पुरुष और प्रकृति के मिलने से ही जीव का जन्म होता है।
-**प्रकृति** से हमें **पञ्चमहाभूतों से बना मानव देह** मिलता है।
-इसमें प्रविष्ट **आत्मा अपने साथ पूर्व जन्म के अनुभवों से युक्त मन, बुद्धि व अहङ्कार लेकर आती है।**
-**प्रकृति त्रिगुणात्मक** होने के कारण हमको सत्त्व, रज और तमोगुण विरासत में मिलते है।

शरीर के लिए सोना भी आवश्यक है जिससे शरीर को पुनः ऊर्जा मिलती है, इसलिए इन गुणों का समन्वय आवश्यक है।

हम न देव है न ही दानव। **मानव देह एक चौराहा है, जहाँ से हमें यह चुनने का अधिकार मिलता है कि हमें किस मार्ग पर चलना है, दैवीय गुणों वाले या आसुरी गुणों वाले।**

हम देखते हैं, एक ही परिवार के दो बालकों के स्वभाव व गुण कितनी भिन्नता लिए हुए होते हैं। हमें स्वयं आश्चर्य होता है कि वे दोनों एक ही परिवार से है। एक में मार्दव्य, विनम्रता है तो दूसरा अहङ्कार ग्रसित। **यह भिन्नता पूर्वजन्मों के सञ्चित गुणों का ही परिणाम होती है।**

आत्मा अपने साथ मन, बुद्धि और अहङ्कार को लेकर आती है। पूर्वजन्म का बदला लेने को भी आत्मा किसी घर में जन्म लेती है।

हमें यह विज्ञान समझना होगा। यदि ऐसा नहीं होता तो एक सोलह वर्ष का बालक, जिसके माता-पिता नहीं हों, वह कैसे भगवद्गीता जैसे कठिन शास्त्र पर एक जन-ग्राह्य सरल भाष्य लिख लेता है? जो बालक केवल सोलह वर्ष का है, जिसने कभी सागर, हिमालय, परिवार नहीं देखा, वह कैसे अपने भाष्य-ग्रन्थ में यह सब विस्तार से वर्णित कर देता है? यह पूर्वजन्मों की सञ्चित स्मृतियों के बिना कैसे सम्भव हो सकता है?

हम बात कर रहे है सन्त श्री ज्ञानेश्वर महाराज की और उनके महान ग्रन्थ ज्ञानेश्वरी की।

यदि हमें अपने इस मानव जन्म में **दैवीय गुणों को धारण करके अपने जीवन को सफल बनाना है तो** हमें अनेक बातों पर समय रहते, ध्यान देना अति आवश्यक है:
हमारी सङ्गत कैसी है?
हमारा सामाजिक वतावरण कैसा है?
हम क्या पढ़ते है?
हम दूरदर्शन पर, मोबाइल पर क्या देखते है?
ये सब हमारे गुणों के चयन में महत्त्वपूर्ण भूमिकाएँ निभाते है।

श्रीभगवान् कहते हैं, **नित्ययुक्ता उपासते,** किसी भी काम को, गुण को निरन्तर करने, अपनाने से वह आत्मसात होता है। पूजा भी करें तो नित्य करें, मन को सन्तुलित करके, श्रीभगवान् से संवाद स्थापित करके, अश्रुपूरित नेत्रों से, शबरी, तुलसी, मीरा के भाव मन में झङ्कृत कर के, जब हम ऐसी उपासना करते हैं तभी वह सच्ची उपासना होती है, प्रभु तक पहुँचती है।

यदि हम अपना समय केवल, सोने, आलस्य, प्रमाद में लगाएँगे, मोबाइल देखते जाएँगे, सन्त साहित्य को हाथ भी नहीं लगाएँगे तो हमारी आसुरी सम्पत्ति बढ़ती जाएगी।

आसुरी सम्पदा के बारे में श्रीभगवान् इसलिए बता रहे हैं जिससे हमें पता रहे कि हमें किस पथ पर नहीं जाना है।

स्वाभिमान और अभिमान में दोनों को अलग करनेवाली एक बहुत पतली रेखा होती है। स्वाभिमान होना आवश्यक है किन्तु अभिमान नहीं। अभिमान आसुरी गुण है।

जिसको अपने आचार-विचार, तन-मन की स्वछता, शुचि का ध्यान नहीं, उसमें दैवीय गुण आना सम्भव नहीं। पुण्य कर्मों की ओर प्रवृत्ति तथा पाप कर्मों से निवृत्ति करना आवश्यक है।

रेशम का कीड़ा स्वयं को अपने ही तन्तुओं के पाश में बाँध लेता है, यही उसकी मृत्यु का कारण बनता है। उसी प्रकार आसुरी सम्पत्ति वाले अपने स्वयं के चारों ओर विचारों का जाल बुन लेते है, उन विचारों से बाहर ही नहीं निकलते, सदा केवल स्वयं के हित और आराम का ही सोचते है। सुबह उठते ही रात को खाने में क्या बनेगा यह पूछते है। उन्हें अपना बिछौना भी समेटना

भारी लगता है, घर में झाड़ू-पौंछा भी नहीं करते, अपना खाने का डिब्बा भी नहीं धोते।

न शौचं(न्) नापि चाचारो, स्वछता को महत्त्व नहीं देते। बिना स्नान ही अपने कार्यालय चले जाते है। हवा की भाँति स्वेच्छाचारी होते है। बकरी जैसे दिन भर कुछ न कुछ खाते रहते है।

असत्यवादी होते है। झूठ बोलने में प्रवीण, झूठ बोलकर ही अपना काम निकालते है, ग्लानि रहित होते है।

अभी नागपुर गीता परिवार द्वारा चतुर्दशक पूर्ति समारोह में बावन हजार पाँच सौ से अधिक बालकों ने गीताजी के तीन कण्ठस्थ अध्यायों का पाठ किया। बहुत सुन्दर आयोजन था, जिसका दायित्व सांसद श्री नितिन गडकरीजी ने लिया था। बात-चीत के दौरान उन्होंने कहा था-

"कोई झूठ कितना ही चला ले पर अन्तिम विजय सत्य की ही होती है।"

कितनी बड़ी बात बता दी उन्होंने कि अन्तिम विजय तो सत्य की होगी, लेकिन जिसे झूठ बोलने में कुछ लगता ही नहीं, जो झूठ बोलते समय सोचते नहीं और ऊपर से बोलते है कि मुझे झूठ बोलना तो आता ही नहीं। मैं तो सत्य ही बोल रहा हूँ। ऐसा कहकर, झूठ ही बोलते हैं।

न सत्यम तेुषु विद्यते, उनके जीवन में कहीं सत्य विद्यमान नहीं रहता। आसुरी सम्पत्ति के लोग इस भाव से भरे हुए रहते है। उनका तत्त्वज्ञान क्या होगा? उनकी सोच क्या होगी?
सोच असत्यम् कैसे होती है?

16.8

असत्यमप्रतिष्ठं(न्) ते, जगदाहुरनीश्वरम्।
अपरस्परसम्भूतं(ङ्), किमन्यत्कामहैतुकम्।।16.8।।

वे कहा करते हैं कि संसार असत्य, बिना मर्यादा के (और) बिना ईश्वर के अपने-आप केवल स्त्री-पुरुष के संयोग से पैदा हुआ है। (इसलिये) काम ही इसका कारण है, इसके सिवाय और क्या कारण है? (और कोई कारण हो ही नहीं सकता।)

16.9

एतां(न्) दृष्टिमवष्टभ्य, नष्टात्मानोऽल्पबुद्धयः।
प्रभवन्त्युग्रकर्माणः, क्षयाय जगतोऽहिताः।।16.9।।

इस (पूर्वोक्त) (नास्तिक) दृष्टि का आश्रय लेने वाले जो मनुष्य अपने नित्य स्वरूप को नहीं मानते, जिनकी बुद्धि तुच्छ है, जो उग्र कर्म करने वाले (और) संसार के शत्रु हैं, उन मनुष्यों की सामर्थ्य का उपयोग जगत का नाश करने के लिये ही होता है।

विवेचन- आसुरी प्रवृत्ति के लोगों की अपनी एक सोच होती है; अपनी एक तर्क मीमांसा होती है; अपना एक तत्त्वज्ञान होता है। वे असत्य को प्रतिष्ठा देते हैं और ईश्वर को झूठ मानते हैं। वे कहते हैं कि "बच्चा, माता-पिता से जन्म लेता है। इसमें श्रीभगवान् ने क्या किया? यह तो केवल नैसर्गिक घटना है। इसमें श्रीभगवान् की कोई भूमिका नहीं होती। श्रीभगवान् हैं ही नहीं।"

जैसा प्रह्लाद के पिता, हिरण्यकश्यपु वैसा बोलते हैं। अहङ्कार से मदमस्त हिरण्यकश्यपु भक्त प्रह्लाद को कहता है, "कहाँ है तेरा भगवान्? मैं हूँ भगवान् और कोई नहीं।" उसने ब्रह्मा जी से वरदान पाया था। उसने पहले तो अमरत्व का वरदान माँगा। घोर तपस्या की।

ब्रह्मा जी प्रकट हो गये और बोले, “माँगो वरदान!” तो उसने वरदान माँगा कि “मुझे अमर बना दो।” ब्रह्मा जी ने कहा, “यह तो किसी को नहीं मिल सकता। जो उत्पन्न हुआ है, वह मरेगा। जो प्रकट हुआ है, उसका समाप्त होना तय है। दूसरा कुछ माँगो।" तब उसने ऐसा वरदान माँगा। उसने कह दिया कि “मुझे मनुष्य के द्वारा मृत्यु नहीं चाहिए; न मुझे असुरों के द्वारा, न देवों के द्वारा, न किसी पशु से मुझे मृत्यु चाहिए।”
ब्रह्मा जी ने कहा, “तथास्तु।"

उसने कहा, “न! न! आगे की शर्त भी सुनो- न घर के अन्दर, न घर के बाहर, न ऊपर आकाश में, न धरती पर, न पाताल में मुझे मृत्यु चाहिए; न मैं शस्त्रों से मरूँ, न मैं अस्त्रों से मरूँ, न मैं सुबह मरूँ, न मैं रात को मरूँ।" इतनी बड़ी सूची दे दी। श्रीभगवान् तथास्तु कहते हुए चले गए। फिर वह मदमस्त हो गया अहङ्कार से।

एक दिन हिरण्यकश्यपु ने प्रह्लाद से कहा, “अरे! कहाँ है तेरा भगवान्? मैं हूँ भगवान्। मेरे अलावा और कोई भगवान् नहीं। तू मेरे नाम का जाप कर। तू यह क्या नारायण-नारायण कर रहा है?”

प्रह्लाद ने कहा, "मैं तो मानूँगा श्रीभगवान् को। वे चारों ओर हैं।”
“अरे कहाँ है? मुझे दिखा तो सही। चारों तरफ हैं तो कहाँ है? क्या वह इस खम्भे में है?”

प्रह्लाद ने कहा, “जब सारी चराचर सृष्टि में हैं तो खम्भे में भी हैं।
हिरण्यकश्यपु बोला, “ले तेरे श्रीभगवान् को मैं लात मारता हूँ।" यह कहकर उस खम्भे पर लात मार दी। खम्भा टूटा और टूटे हुए खम्भे से श्रीभगवान् नृसिंह रूप में प्रकट हुए।

न वे नर थे, न पशु थे, न देवता थे। उनका मुख सिंह का था किन्तु शरीर नर का था इसलिए नृसिंह रूप में आए। न शस्त्रों से, न अस्त्रों से मारा अपितु अपने नाखूनों से उसको चीरा। न घर के अन्दर, न घर के बाहर, बीच में दरवाजे पर बैठकर उसके पेट को फाड़ा। उस समय न सुबह थी, न रात थी, वह सन्ध्या का समय था। न सूर्य थे, न चन्द्र- ऐसे समय पर मारा।

इस प्रकार श्रीभगवान् ने उपाय तो ढूँढ ही लिया कि इसको कैसे समाप्त करें किन्तु ऐसे आसुरी प्रवृत्ति के लोग जो श्रीभगवान् तक को नहीं मानते, वे केवल मानते हैं कि विश्व केवल स्त्री-पुरुष के संयोग से उत्पन्न हुआ है और केवल काम ही विश्वनिर्मिति का कारण है, इसलिए काम ही सर्वश्रेष्ठ है। श्रीभगवान् से श्रेष्ठ है। विषय भोग लेने के लिए ही मानव का जन्म है। एक दिन मृत्यु तो आने वाली है। इनकी आनन्द की परिभाषा ही कुछ और है। ये सुख को ही आनन्द समझने लग गए और केवल शरीर सुख की इच्छा से पागल हो गए। ये कहते हैं, “कैसा मुहूर्त? कोई मुहूर्त नहीं होता। अरे! पशुओं के विवाह क्या मुहूर्त पर होते हैं? फिर भी बच्चे तो उनको भी होते हैं न। कौन से मुहूर्त की बात कर रहे हो? हर समय अच्छा है। कभी भी पी सकते हैं। उसके लिए मुहूर्त की आवश्यकता नहीं।” तो ये रात-दिन मदिरा पीने लग जाते हैं।

“अरे! कौन से पाप और कौन से पुण्य?” यह उनकी धारणा होती है।
आप कहते हैं कि कीड़े की योनि में जाओगे। कीड़े भी मस्त होते हैं उनकी दृष्टि में। वे कीचड़ में, गन्दगी में भी आनन्द करते हैं। वे कहते हैं, “अरे देखो! उस व्यक्ति को। कभी शराब नहीं पी जीवन में। कभी सिगरेट नहीं पी। कभी कुछ बुरा काम नहीं किया। फिर भी उम्र के साठवें वर्ष में मर गया न। और देखो मैं पचहत्तर वर्ष का हूँ। सब कुछ कर रहा हूँ और फिर भी मस्त हूँ।”

इस प्रकार का अहङ्कार से कूट-कूट कर भरा हुआ भाव उनके मन में रहता है। पाप-पुण्य सब कुछ झूठ है। ऐसा ही उनको लगता है। ऐसे भाव से वे चलते हैं।

इनकी प्रवृत्ति कैसी होती है?
हर बात को नकारात्मक रूप से लेंगे। हर बात से नकारात्मक ढूँढकर निकालेंगे और बस वही बात बोलेंगे। लोगों को भी बड़ा आनन्द आता है इनकी बातें सुनने में।

एक व्यक्ति किसी गुरुजी के पास गया और गुरुजी से कहने लगा, “कोई पूछता ही नहीं मुझे। कोई ध्यान ही नहीं देता मेरी ओर।

मुझे ऐसा कुछ बताओ कि मैं बड़ा हो जाऊँ और सब मुझे पूछें।"

गुरुजी ने कहा, "एक ही काम कर। उल्टा बोलना शुरू कर और छः महीने, साल भर बाद वापस मिलना, किन्तु साल भर उल्टा ही बोलते रहना। वह व्यक्ति चला गया। कोई उसके पास आया और बोला, "देखो! कितना प्यारा बच्चा है।" यह तुरन्त कहता, "काहे का प्यारा बच्चा! अरे यह देह नश्वर है।" किसी ने कहा, "देखो देखो! सूरज उग रहा है, कितना सुन्दर दिख रहा है! "अरे! काहे का सुन्दर। वह तो आग का गोला है।"

हर बात में उल्टा बोलने का कार्यक्रम किया और लोग समझने लगे, "आश्चर्य है। हम ऐसे सूर्य को सुन्दर कहते हैं। यह तो उल्टा है। हमने नहीं जाना कि यह शरीर नश्वर होता है। यह विद्वान जानता है।" वह हर बात को उल्टा बोल रहा था और सारे व्यक्ति उसके पीछे चलने लग गए। कहते, "बड़ा विद्वान है यह तो।"

साल भर बाद जब वह गुरुजी के पास आया तो पीछे और पचास व्यक्ति चल रहे थे। बड़ा खुश, गले में माला पहन कर आया था।

गुरुजी ने पूछा, "कैसा चल रहा है?"
बोला, "बहुत बढ़िया। आपने जो मन्त्र दिया, उसके बाद देखिए कितने शिष्य बन गए हैं। मैं भी गुरुजी बन गया।"

यह उल्टा काम करने वाले लोग अपने झूठे ज्ञान का अवलम्बन करते हैं। उनका ज्ञान भी झूठा होता है लेकिन उसी को सत्य मानकर चलते हैं और स्वयं तो मन्दबुद्धि होते ही हैं, किन्तु अपने साथ वालों का भी सर्वनाश करते हैं। ये जगत का अहित करने में लग जाते हैं।

खुद मदिरा पीएँगे और दूसरों को साथ ले जाएँगे। "चलो पीएँगे। कुछ नहीं होता, आनन्द आता है।" उनकी हर बात में अपशब्द होते हैं। ऐसे लोगों में अहङ्कार कूट-कूट कर भरा होता है। इस प्रकार के लोग अपना अनुकरण करने वाले अपने साथियों का भी सर्वनाश करके रहते हैं- इसमें कोई दो राय नहीं।

16.10

काममाश्रित्य दुष्पूरं(न्), दम्भमानमदान्विताः।
मोहाद्गृहीत्वासद्ग्राहान्, प्रवर्तन्तेऽशुचिव्रताः।।16.10।।

कभी पूरी न होने वाली कामनाओं का आश्रय लेकर दम्भ, अभिमान और मद में चूर रहने वाले (तथा) अपवित्र व्रत धारण करने वाले मनुष्य मोह के कारण दुराग्रहों को धारण करके (संसार में) विचरते रहते हैं।

विवेचन- आदरणीय विवेचक जी का एक मित्र बहुत मोटा था। उसे डॉक्टर ने केवल सलाद खाने को कहा था। घरवाले उसे सलाद ही देने लगे पर उसका वजन कम नहीं हुआ। मालूम पड़ा घर पहुँचने से पहले वह बाहर चटर-पटर खा कर आता था। उसने विवेचक जी को भी सुझाव दिया कि "बाहर खाया करो। बाहर की पानी-पूरी खाया करो, इससे रोग प्रतिरोधक क्षमता बढ़ जाती है।"

आसुरी लोग अपनी दोषपूर्ण धारणाओं को ही सही मानते है।

16.11

चिन्तामपरिमेयां(ञ्) च, प्रलयान्तामुपाश्रिताः।

कामोपभोगपरमा, एतावदिति निश्चिताः।।16.11।।

(वे) मृत्यु पर्यन्त रहने वाली अपार चिन्ताओं का आश्रय लेने वाले, पदार्थों का संग्रह और उनका भोग करने में ही लगे रहने वाले और 'जो कुछ है, वह इतना ही है' - ऐसा निश्चय करने वाले होते हैं।

विवेचन- चिन्तामपरिमेयां(ञ्) च, जीवन में केवल पैसे कमाने से सब नहीं होता। कमाए हुए पैसों का ठीक से नियोजन करना आना भी उतना ही आवश्यक है, तभी जीवन समृद्ध होता है।

लक्ष्मीजी उल्लू पर बैठकर आती हैं। लक्ष्मीजी के साथ भगवान् विष्णुजी की आराधना भी आवश्यक है। बिना विष्णुजी के आह्वान से आई लक्ष्मीजी टिकती नहीं हैं, अशुभ होती हैं। दिवाली पर हम माण्डना माण्डते है, शुभ-लाभ लिखते है, जिससे जो लक्ष्मीजी हमारे घर आए वह शुभ हों। यदि भगवान् नारायण के आवाह्न के बिना लक्ष्मीजी को बुलाते हैं तो तीन पीढ़ियों की सम्पत्ति भी धूल में मिलने में अधिक समय नहीं लगता।

नारायण के पीछे आई लक्ष्मीजी कमला होती हैं, गजलक्ष्मी होती हैं एवं चिर काल तक घर में टिकती हैं। सभी अपने बच्चों को 'न' कहना सीखें, उन्हें न सुनने की आदत डालें।

विवेचक जब छात्रावास (Hostel) में थे, तब उन्होंने अपने पिता जो कि एक बड़े उद्योगपति थे, को पत्र लिखकर कहा कि "अब मैं स्नातक स्तर पर विश्वविद्यालय में आ गया हूँ, संज्ञान हो गया हूँ तो अब मुझे मोटर साइकिल दिलवा दीजिए। "पिताजी का पत्र आया तो युवा विवेचक और उनके मित्रों को लगा कि मोटर साइकिल के लिए पैसा आया होगा पर देखा तो एक पत्र था कि "बेटा मुझे लगता है, अभी तुम्हें मोटर साइकिल की आवश्यकता नहीं है, इससे तो अच्छा है तुम तैरना सीखने के लिए तरणताल (Sweeming Pool) जाओ। तुम्हारे जन्मदिन के उपलक्ष में, मैं तुम्हें वहाँ की आजीवन सदस्यता दिलवा देता हूँ। "युवा विवेचक हतप्रभ रह गए।

समय के साथ उन्हें समझ में आया कि उनके पिताजी उन्हें 'न' सुनने की आदत डालना चाहते थे, जिसके लिए आज वे अपने दिवङ्गत पिता को बहुत धन्यवाद देते हैं। उनके पिता के सभी सुन्दर पत्रों को उन्होंने पुस्तक रूप में प्रकाशित किया जिससे उनके अनुकरणीय सन्देश सब लोगों तक पहुँचे। आजकल माता-पिता को अति लाड़-दुलार में बच्चों की प्रत्येक हठ को पूरी करके अपनी सक्षमता को दूसरों को दिखाना, बच्चों के संस्कार-रोपण से अधिक आवश्यक लगता है। आश्चर्य नहीं कि ऐसे बच्चे जिन्हें न सुनने की आदत ही नहीं होती, अति दुलार में बिगड़ जाते है और वयस्क होने पर एक हठी, कठोर, दूसरों का सम्मान न करने वाले वयस्क के रूप में सामने आते हैं। जैसा कि आज के भारतीय हिन्दू समाज में हम देख रहे हैं।

बच्चों का लालन-पालन यदि माता-पिता ऐसी दुर्दर्शिता के साथ करते हैं तो बच्चों को अच्छे संस्कार मिलते हैं। जहाँ, जब कठोर होने की आवश्यकता हो तो कठोर, दुलार की जगह दुलार, अनुशासन के स्थान पर अनुशासन यदि माता-पिता रखते हैं तो बच्चे बड़े होकर अच्छे संस्कारवान, सदाचारी, परिस्थितियों को समझने वाले अच्छे, गुणी वयस्क के रूप में विकसित होते हैं। बच्चों को मोबाइल देना भी सम्पन्नता दिखाने का अवसर हो गया है। बच्चों को बिगाड़ना न हो तो उन्हें सादा डब्बेवाला मोबाइल ही दें जिससे वे फोन लगा पाएं और ले पाएं।

16.12

आशापाशशतैर्बद्धाः(ख्), कामक्रोधपरायणाः।
ईहन्ते कामभोगार्थम्, अन्यायेनार्थसञ्चयान्।।16.12।।

(वे) आशा की सैकड़ों फाँसियों से बँधे हुए मनुष्य काम-क्रोध के परायण होकर पदार्थों का भोग करने के लिये अन्याय पूर्वक धन-संचय करने की चेष्टा करते रहते हैं।

विवेचन- ऐसे व्यक्ति सैकड़ों आशाओं के पाश से बद्ध हो जाते हैं, जकड़ जाते हैं और जब कामनाएँ होंगी तो क्रोध तो होगा। कामनाओं का पीछा करता-करता क्रोध पहुँचता ही है।

"क्रोधाद्भवति सम्मोहः सम्मोहात्स्मृतिविभ्रमः।

क्रोध आ गया तो उससे सम्मोहन आ जाता है। सम्मोहन हो गया तो फिर स्मृति का विभ्रम हो जाता है। स्मृति चली जाती है। क्या अच्छा-क्या बुरा, यह सोचने का विवेक खो जाता है। उसके बाद वह क्रोध इतना कूट-कूट कर भर जाता है कि वह सर्वनाश का कारण बनता है।

स्मृतिभ्रंशाद् बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति।।

उसके प्राण का भी नाश हो जाता है, वह ऐसा कामनाओं का और क्रोध का जाल उसके आस-पास बुनता है। वह काम-वासनाओं की पूर्ति करने में और क्रोध में ही जीने लग जाता है और अर्थ सञ्चय में लग जाता है, क्योंकि कामनाओं की पूर्ति करनी हो तो पैसा चाहिए तभी काम और भोग का आस्वादन करने को मिलता है। इनके लिए वह अन्याय द्वारा अर्थ सञ्चय में लग जाता है। पैसा-पैसा-पैसा, उसको दूसरा कुछ सूझता नहीं।

पैसा कमाना बहुत आसान है। उस पैसे को खर्च कैसे करना है, इसका प्रशिक्षण बड़ा आवश्यक है। सबसे पहले उसमें से कितना भाग हमारे अगले व्यवसाय के लिए अलग निकालना है, यह सोचना पड़ता है। ऐसा नहीं कि पैसा आते ही खर्च कर दो। ऐसे में सारी पूँजी को भी खर्च करके सारा व्यवसाय चौपट करने वाले लोग देखे गए हैं।

परिवार का दूसरा जो काम है, वह यश प्राप्ति के लिए पैसा खर्च होना चाहिए। "यश प्राप्ति के लिए" का क्या मतलब हुआ? कि हमारे पैसे से कुछ ऐसे काम हमारे पूर्वजों के नाम से हम करें जिससे परिवार की कीर्ति बने और इसलिए हमारे यहाँ धर्मशालाएँ बनीं तो दादा जी का नाम दिया जाता है। किसी विद्यालय या कॉलेज को दान देकर वहाँ पर नाना जी का, दादा जी का, दादी का नाम लगाया जाता है। परिवार के यश के लिए कुछ पैसे का अंश खर्च होना चाहिए। कुछ पैसा ऐसे दान में लगना चाहिए जहाँ से किसी और को पता ही नहीं चले कि यह दान दिया। ऐसा दान सात्त्विक दान कहलाता है।

इससे पहले वाला जो था नाम वाला, वह राजसी दान है। वह भी करना चाहिए लेकिन सात्त्विक दान में भी कुछ पैसा खर्च होना चाहिए। यह पता ही न चले कि यह दान हुआ।

उसके बाद परिवार के भरण-पोषण के लिए और उनकी इच्छाओं और कामनाओं की पूर्ति के लिए कुछ पैसा देना चाहिए और फिर बच जाए तो स्वयं पर खर्च करना चाहिए। ऐसे पाँच व्यय के विषय भगवान् श्री कृष्ण ने स्वयं बताए।

इस प्रकार से पैसा खर्च हो। नहीं तो फिर वही पैसा आपके परिवार का, आपके कुल का, आपकी आने वाली पीढ़ियों का सत्यानाश करके जाएगा। श्रीभगवान् कहते हैं, "यह जो धन-लोभ है, यह कैसे आगे बढ़ता है, देखो।"

16.13

इदमद्य मया लब्धम्, इमं(म्) प्राप्स्ये मनोरथम्।
इदमस्तीदमपि मे, भविष्यति पुनर्धनम्।।16.13।।

वे इस प्रकार के मनोरथ किया करते हैं कि - इतनी वस्तुएँ तो हमने आज प्राप्त कर लीं (और अब) इस मनोरथ को प्राप्त (पूरा) कर लेंगे। इतना धन तो हमारे पास है ही, इतना (धन) फिर भी हो जायगा।

विवेचन- आज मुझे यह प्राप्त हुआ है। आगे के मेरे मनोरथ पूर्ण करने के लिए मैं और अधिक धन कमाऊँगा। मैं और अधिक धन इकठ्ठा करूँगा।

यदि यह पीढ़ी संस्कारवान न हो तो पिछली पीढ़ियों का कमाया पैसा चला जाता है। बचपन में बच्चों को तीर्थाटन कराएँ, सादगी से धर्मशाला में रहना सिखाएँ। मन्दिरों, धर्मशालाओं में प्रसाद ग्रहण करना सिखाएँ। फाइव स्टार की सुख-सुविधाओं की आदत

न लगने दें। विदेश भ्रमण से अच्छा है हम उन्हें पहले भारत दर्शन तो करा दें। उन्हें अपने देश और संस्कृति की विविधताएँ तो देखने, समझने दें। उन्हें चारों-धाम, मथुरा, वृन्दावन आदि घुमाएँ।

स्वामीजी के साथ विगत चालीस वर्षों से गीता परिवार बाल संस्कार पर बालकों के साथ काम कर रहा है।

लोक मन संस्कार करना यह परम गति साधना है,
और रचना गौण है सब यह शिखर संयोजना है।
कार्यक्रम की योजनाएं, धारणाएं,
कल्पनाएं एक ही उद्देश्य प्रेरित।
तीव्र उत्कट कामनाएँ हर सुमन को खाद,
जल से पूर्ण विकसित पालना है,
लोक मन संस्कार करना यह परम गति साधना है।
राष्ट्र की अट्टालिका हों विश्व में सर्वोच्च,
अनुपम गोद में होते क्रियान्वित प्रगति के सोपान उत्तम
किन्तु हर निर्माण के हित,
ईंट पक्की ढालना है, लोक मन संस्कार करना यह परम गति साधना है।

16.14

असौ मया हतः(श्) शत्रु:(र्), हनिष्ये चापरानपि।
ईश्वरोऽहमहं(म्) भोगी, सिद्धोऽहं(म्) बलवान्सुखी।।16.14।।

वह शत्रु तो हमारे द्वारा मारा गया और (उन) दूसरे शत्रुओं को भी (हम) मार डालेंगे। हम ईश्वर (सर्व समर्थ) हैं। हम भोग भोगने वाले हैं।हम सिद्ध हैं, (हम) बड़े बलवान (और) सुखी हैं।

विवेचन- आज मैंने उसे समाप्त किया, कल उसको करूँगा। मुझे सारी सिद्धियाँ प्राप्त हैं, मैं सर्व सामर्थ्यवान हूँ, मैं सर्व सुखी हूँ, ऐसे भाव जो रखते हैं।

गीता परिवार जेल में बन्दी मानवों को जूम (zoom) पर नित्य सिखाते हैं।

एक बार विवेचक बन्दियों का वर्ग ले रहे थे तो इस श्लोक पर एक बन्दी बोला, "भगवान् श्रीकृष्ण ने युद्ध कर्त्तव्य है, ऐसा बोला। मैंने एक को मारा है, बाहर निकलकर एक और को मारूँगा।"

ऐसा गीताजी के श्लोकों का उल्टा अर्थ निकाला जाता है। तब विवेचक ने उसे समझाया कि "**यहाँ श्रीभगवान् स्वभावगत कर्म को ही धर्म कह रहे है।** अर्जुन क्षत्रिय हैं इसलिए उन्कहें ह रहे हैं।"

निर्वेर: सर्वभूतेषु य: स मामेति पाण्डव।
हे अर्जुन! तू निर्वैर बन जा, तभी तू मुझे प्राप्त कर पाएगा।

गीताजी का सही अर्थ निकालना चाहिए। जब उसे समझाया तो उसकी आँखों में पानी आ गया। बोला, "ऐसा किसी ने नहीं समझाया। वैर भाव के कारण नींद नहीं आती थी। अब मन शान्त हुआ।"

आसुरी सम्पदा अशान्त बनाती है।

अहङ्कार युक्त लोग भी यज्ञादि कर के अपनी शक्ति बढ़ाते हैं। रावण ने कितने ही यज्ञ किये, अपने मस्तक तक काटकर

यज्ञ-कुण्ड में डाल दिए थे।

16.15

आढ्योऽभिजनवानस्मि, कोऽन्योऽस्ति सदृशो मया।
यक्ष्ये दास्यामि मोदिष्य, इत्यज्ञानविमोहिताः।।16.15।।

हम धनवान हैं, बहुत से मनुष्य हमारे पास हैं, हमारे समान दूसरा कौन है? (हम) खूब यज्ञ करेंगे, दान देंगे (और) मौज करेंगे - इस तरह (वे) अज्ञान से मोहित रहते हैं।

16.16

अनेकचित्तविभ्रान्ता, मोहजालसमावृताः।
प्रसक्ताः(ख्) कामभोगेषु, पतन्ति नरकेऽशुचौ।।16.16।।

(कामनाओं के कारण) तरह-तरह से भ्रमित चित्त वाले, मोह-जाल में अच्छी तरह से फँसे हुए (तथा) पदार्थों और भोगों में अत्यन्त आसक्त रहने वाले मनुष्य भयंकर नरकों में गिरते हैं।

विवेचन- ऐसे लोग मोहित रहते हैं। काम-वासनाओं के कारण ये अपने कोष में बँध जाते है। मैं यह करूँगा, वह करूँगा तो पाप मुक्त हो जाऊँगा। ये लोग भ्रान्ति में जीते हैं। मोह, माया विषयक भोगों में लिप्त रहने के कारण नर्क में पड़े रहते हैं।

एक मित्र ने फोन कर विवेचक जी को बताया कि मुझे पता चला है कि गीताजी के अध्याय नौ के बीसवें श्लोक में तो भगवान् श्रीकृष्ण ने स्वयं कहा है, खूब पीयो, सोमरस का पान करो, मजे करो। चाहे खूब पाप करो बस एक यज्ञ कर लो तो स्वर्ग में चले जाओगे।

त्रैविद्या मां(म्) सोमपाः(फ्) पूतपापा,
यज्ञैरिष्ट्वा स्वर्गतिं(म्) प्रार्थयन्ते।
ते पुण्यमासाद्य सुरेन्द्रलोकम्
अश्नन्ति दिव्यान्दिवि देवभोगान्॥9.20॥

विवेचेक जी ने उससे कहा, तुमने उसके आगे वाला श्लोक नही पढ़ा, उसमें स्पष्ट लिखा है कि जैसे ही सञ्चित पुण्य समाप्त हो जाता है तो ऐसे लोगों को स्वर्ग से निकाल देते हैं और पुनः पृथ्वी-लोक में नीच योनियों मे डाल देते है।

ते तं(म्) भुक्त्वा स्वर्गलोकं(वँ) विशालं(ङ्),
क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं(वँ) विशन्ति।
एवं(न्) त्रयीधर्ममनुप्रपन्ना,
गतागतं(ङ्) कामकामा लभन्ते॥9.21॥

इसीलिए हमे सजग होकर जीवन जीना होगा। विवेक सम्पन्न न होने से अहङ्कार बढ़ जाता है। अहङ्कार से असत्य आ जाता है जो डुबो देता है। यह दम्भीयता आसुरी गुणों से आती है।

16.17

आत्मसम्भाविताः(स्) स्तब्धा, धनमानमदान्विताः।
यजन्ते नामयज्ञैस्ते, दम्भेनाविधिपूर्वकम्।।16.17।।

अपने को सबसे अधिक पूज्य मानने वाले, अकड़ रखने वाले (तथा) धन और मान के मद में चूर रहने वाले वे मनुष्य दम्भ से अविधिपूर्वक नाममात्र के यज्ञों से यजन करते हैं।

विवेचन- दम्भ का नशा ऐसा चढ़ता है कि ऐसे मनुष्य स्वयं को ही श्रीभगवान् समझने लगते है।

एक धनिक ने एक जगह होने वाली कथा के आयोजकों को पैसे देकर स्वयं को यजमान बनवा लिया। अपनी गाड़ी पर बोर्ड लगवाया "मुख्य यजमान"। इतना ही नहीं, स्टेज तक उनकी गाड़ी आए, ऐसी व्यवस्था करवा दी। वह धनिक सात दिनों तक अपनी कार पर उस बोर्ड को लगाकर घूमते रहे। **अहङ्कार से भर जाने पर ऐसे लोग अशास्त्रीय यज्ञ करवाते हैं, जो राजसिक है। ऐसे लोग दैवद्रोही हो जाते हैं। उनके दम्भ और दर्प उन्हें काम और क्रोध की ओर ले जाते हैं।**

16.18

अहङ्कारं(म्) बलं(न्) दर्पं(ङ्), कामं(ङ्) क्रोधं(ञ्) च संश्रिताः ।
मामात्मपरदेहेषु, प्रद्विषन्तोऽभ्यसूयकाः।।16.18।।

(वे) अहंकार, हठ, घमण्ड, कामना और क्रोध का आश्रय लेने वाले मनुष्य अपने और दूसरों के शरीर में (रहने वाले) मुझ अन्तर्यामी के साथ द्वेष करते हैं (तथा) (मेरे और दूसरों के गुणों में) दोष दृष्टि रखते हैं।

विवेचन- अहङ्कार, क्रोध, घमण्ड और कामनाओं से भरे लोग दूसरों की निन्दा में जुट जाते हैं। मुझ अन्तर्यामी का द्वेष करते हैं। वे कहते हैं, श्रीभगवान् क्या करेंगे? सब काम पैसों से ही होता है। जब ऐसे विचार और आचार होते हैं तो दुर्गति निश्चित होती है।

16.19

तानहं(न्) द्विषतः(ख्) क्रूरान् , संसारेषु नराधमान्।
क्षिपाम्यजस्रमशुभान्, आसुरीष्वेव योनिषु।।16.19।।

उन द्वेष करने वाले, क्रूर स्वभाव वाले (और) संसार में महानीच, अपवित्र मनुष्यों को मैं बार-बार आसुरी योनियों में ही गिराता ही रहता हूँ।

विवेचन- ऐसा मेरा द्वेष करने वाले क्रूर, नराधम बार-बार इस संसार में आसुरी योनियों में जन्म लेते रहते हैं।

आसुरी योनियों में जन्म लेकर ऐसे लोग क्या करते हैं?

16.20

आसुरीं(यँ) योनिमापन्ना, मूढा जन्मनि जन्मनि।
मामप्राप्यैव कौन्तेय, ततो यान्त्यधमां(ङ्) गतिम्।।16.20।।

हे कुन्तीनन्दन ! (वे) मूढ मनुष्य मुझे प्राप्त न करके ही जन्म-जन्मान्तर में आसुरी योनि को प्राप्त होते हैं, (फिर) उससे भी अधिक अधम गति में अर्थात् भयंकर नरकों में चले जाते हैं।

विवेचन- ऐसे लोग अपनी आसुरी प्रवृत्तियों के कारण और भी नीच योनियों को प्राप्त होते हैं, इसलिए मनुष्य योनि बहुत महत्त्वपूर्ण है। इस योनि में वह चौराहा मिलता है कि हम चयन कर पाएं कि हमें दैवीय-गुणों के मार्ग पर चलना है या आसुरी-गुणों के। हमें दैवीय गुणों से अपना जीवन उन्नत करना है, त्रिदोषों से स्वयं को मुक्त रखना है या आसुरी गुणों से स्वयं के लिए

पाश बुनना है। इस पथ का चयन मनुष्य अपने मन, बुद्धि और अहङ्कार द्वारा करता है।

16.21

त्रिविधं(न्) नरकस्येदं(न्), द्वारं(न्) नाशनमात्मनः।
कामः(ख्) क्रोधस्तथा लोभ:(स्), तस्मादेतत्त्रयं(न्) त्यजेत्।।16.21।।

काम, क्रोध और लोभ - ये तीन प्रकार के नरक के दरवाजे जीवात्मा का पतन करने वाले हैं, इसलिये इन तीनों का त्याग कर देना चाहिये।

विवेचन- काम, क्रोध और लोभ ये तीनों नरक के द्वार प्रतिदिन खुल जाते हैं। विवेचक जी ने अपना अनुभव बताया कि जब उन्होने यह श्लोक कण्ठस्थ किया और चिन्तन किया तो चिन्तित हो गए क्योंकि वे तब बहुत क्रोधित स्वभाव के थे। जब एक मित्र के यहाँ उन्होंने गरुड़ पुराण सुना तो उनके तो होश ही उड़ गए। जब उन्होंने वैतरणी नदी के बारे मे सुना, जो मलमूत्र से भरी नदी थी, जिसमें से खींच कर पापियों को ले जाया जाता है। बाहर दो यमदूत उनका शिरच्छेद करेंगे फिर उन्हें गर्म खौलते तेल में पकोड़े जैसा तला जाएगा, यह सब उनकी विज्ञानवादी बुद्धि को अशक्य लगा। क्रोध में जब विवेक चला जाता है तब हम कुछ भी बोल देते है किन्तु बाद में पछताते हैं।

क्रोध में हमारा अवचेतन मन मूर्छित सा हो जाता है। क्रोध की बेहोशी में मस्तिष्क काम नहीं करता, अर्थात् शिरच्छेद हो जाता है। क्रोध से खून उबलने लगता है, अर्थात् खौलता गर्म तेल। चेहरा पकोड़े जैसा लाल हो जाता है। क्रोध स्वरूप रक्त-चाप, मधुमेह, हृदय रोग जैसे रोग हो जाते हैं, इसीलिए काम, क्रोध व लोभ, इन त्रिदोषों से हमें दूर रहना चाहिए।

16.22

एतैर्विमुक्तः(ख्) कौन्तेय, तमोद्वारैस्त्रिभिर्नरः।
आचरत्यात्मनः(श्) श्रेयस् , ततो याति परां(ङ्) गतिम्।।16.22।।

हे कुन्तीनन्दन ! इन नरक के तीनों दरवाजों से रहित हुआ (जो) मनुष्य अपने कल्याण का आचरण करता है, (वह) उससे परम गति को प्राप्त हो जाता है।

विवेचन- इस प्रकार जो इन त्रि-द्वारों से मुक्त होना चाहता है, उसे अपनी कामनाओं, क्रोध और लोभ से पहले मुक्त होना पड़ेगा, तभी वह इन अँधेरे की ओर ले जाने वाले तीनों द्वारों से दूर हो सकता है।

श्रीभगवान् कहते हैं, यदि मनुष्य कल्याण का आचरण करने लग जाए तो इन त्रि-द्वारों तक जाकर भी लौटकर आ सकता है। तब वह परागति को प्राप्त होकर मुझसे मिलेगा, इसलिए हे अर्जुन! मनमाने व्यवहार से बाहर निकलो।

16.23

यः(श्) शास्त्रविधिमुत्सृज्य, वर्तते कामकारतः।
न स सिद्धिमवाप्नोति , न सुखं(न्) न परां(ङ्) गतिम् ।।16.23।।

जो मनुष्य शास्त्रविधि को छोड़कर अपनी इच्छा से मनमाना आचरण करता है, वह न सिद्धि (अन्तःकरण की शुद्धि) को, न सुख (शान्ति) को (और) न परमगति को (ही) प्राप्त होता है।

विवेचन- शास्त्रों और वेदों को अवश्य ही पढ़ना चाहिए। वेदों का सार उपनिषदों में है, उनको पढ़ना आवश्यक है। समयाभाव के कारण अथवा योग्यता न होने के कारण उतना भी नहीं कर सकते, तो स्वयं गोपालजी द्वारा उपनिषदों रूपी गाय के ज्ञान को दोहकर जो गीतामृत दिया है उसका जो पान करेगा तो उसे समस्त वेदों, उपनिषदों का ज्ञान सरलता से प्राप्त हो जाएगा।

सर्वोपनिषदो गावो दोग्धा गोपालनन्दनः।
पार्थो वत्सः सुधीर्भोक्ता दुग्धं गीतामृतं महत॥

वेदों, शास्त्रों, उपनिषदों को छोड़कर जो व्यवहार करेगा, उसको न तो सिद्धि, न सुख, न मुक्ति और न ही परागति मिलेगी।

इसलिए हे अर्जुन, **तुम शास्त्रों के बताए मार्ग पर चलो।**

16.24

तस्माच्छास्त्रं(म्) प्रमाणं(न्) ते, कार्याकार्यव्यवस्थितौ।
ज्ञात्वा शास्त्रविधानोक्तं(ङ्), कर्म कर्तुमिहार्हसि।।16.24।।

अतः तेरे लिये कर्तव्य-अकर्तव्य की व्यवस्था में शास्त्र (ही) प्रमाण है - (ऐसा) जानकर (तू) इस लोक में शास्त्रविधि से नियत कर्तव्य-कर्म करने योग्य है अर्थात् तुझे शास्त्रविधि के अनुसार कर्तव्य-कर्म करने चाहिये।

विवेचन- श्रीभगवान् कहते हैं कि मनुष्यों को शास्त्रों को प्रमाण मानकर शास्त्रों के कहे अनुसार ही अपने कार्य करने चाहिए। जिनके कार्य शास्त्रानुसार नहीं हैं, उन्हें वे ठीक कर लेने चाहिए। हे अर्जुन! शास्त्र निहित कार्य करना ही तुम्हारे लिए श्रेयस्कर है।

इसी के साथ आज के विवेचन सत्र का समापन हुआ और प्रश्नोत्तर सत्र प्रारम्भ हुआ।

प्रश्नोत्तर सत्र

प्रश्नकर्ता- अबीरामी दीदी
प्रश्न- हम अपने जीवन में दैवीय गुणों को किस प्रकार बढ़ा सकते हैं और आसुरी गुणों को किस प्रकार दूर कर सकते हैं?
उत्तर- जिस प्रकार पानी ऊपर से नीचे की बहता है उसी प्रकार आसुरी गुण भी हमारे अन्दर बहुत सरलता से आ जाते हैं। उनके लिए हमें कोई प्रयास नहीं करना पड़ता है, किन्तु जब पानी को ऊपर चढ़ाना हो तो मोटर का उपयोग करना पड़ता है, उसी प्रकार आसुरी गुणों को दूर करने और दैवीय गुणों को अपनाने के लिए बहुत प्रयास करना पड़ता है। उसके लिए हमें संयम रूपी मोटर का उपयोग करना पड़ता है। धीरे-धीरे, छोटे-छोटे संयम से आरम्भ कर सकते हैं।

प्रश्नकर्ता- अबीरामी दीदी
प्रश्न- सोशल मीडिया पर सच और झूठ का किस प्रकार पता करें?
उत्तर- सोशल मीडिया पर नब्बे प्रतिशत झूठ ही है। उसे हमें निरन्तर देखने की आवश्यकता नहीं है। यूट्यूब आदि पर झूठे समाचार आते हैं। आप थोड़ी सी देर किसी प्रामाणित स्रोत से समाचार पढ़ें अथवा देखें, दिनभर उसमें लगे रहने की आवश्यकता नहीं है।

प्रश्नकर्ता- सुमन दीदी
प्रश्न- तत्त्व ज्ञान का अन्तः करण से सम्बन्ध नहीं है तथापि तत्त्व ज्ञान का अन्तः करण की शुद्धि-अशुद्धि से क्या सम्बन्ध है?
उत्तर- तत्त्व ज्ञान का अन्तः करण से सीधा सम्बन्ध नहीं है किन्तु यह तत्त्व ज्ञान आपकी बुद्धि में स्थित होता है और वहाँ से आपके मन में आता है और तत्पश्चात् वह अन्तः करण से होता हुआ पञ्चेन्द्रियों के माध्यम से आचरण के रूप में प्रकट होता है।

प्रश्नकर्ता- सुमन दीदी
प्रश्न- शरीर छूटने का भय क्यों होता है? जबकि आत्मा तो मरता ही नहीं है?
उत्तर- यह मन के द्वारा बनाया हुआ भय है। सोलहवें अध्याय के प्रथम श्लोक का प्रारम्भ ही अभयम् से होता है, जिसे प्रमुख दैवीय गुण बताया गया है। यदि हम अच्छे कर्म करते हैं तो हमारे मन में किसी प्रकार का भय नहीं होता है। नचिकेता अपने

पिताजी के कहने से यम के पास बिना किसी भय के चला गया, क्योंकि उसका मन भय रहित और शुद्धता के भाव से परिपूर्ण था।

आत्मा के लिए नई देह धारण करना वस्त्र बदलने जैसा है तो उसके लिए भय और दुःख किस प्रकार का।

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय
नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णा-
न्यन्यानि संयाति नवानि देही।।2.22।।

।।ॐ श्रीकृष्णार्पणमस्तु।।

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासु उपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां(यूँ) योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे दैवासुरसम्पद्विभागयोगो नाम षोडशोऽध्याय:।।

इस प्रकार ॐ तत् सत् - इन भगवन्नामों के उच्चारणपूर्वक ब्रह्मविद्या और योगशास्त्रमय श्रीमद्भगवद्गीतोपनिषदरूप श्रीकृष्णार्जुनसंवाद में 'देवासुरसम्पदविभाग योग' नामक सोलहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ।

हमें विश्वास है कि आपको विवेचन की रचना पढ़कर अच्छा लगा होगा। कृपया नीचे दिए लिंक का उपयोग करके हमें अपनी प्रतिक्रिया दीजिए।

https://vivechan.learngeeta.com/feedback/

विवेचन-सार आपने पढ़ा, धन्यवाद!
हम सब गीता सेवी, अनन्य भाव से प्रयास करते हैं कि विवेचन के अंश आप तक शुद्ध वर्तनी में पहुंचे। इसके बाद भी वर्तनी या भाषा संबंधी किन्हीं त्रुटियों के लिए हम क्षमा प्रार्थी हैं।

जय श्री कृष्ण !
संकलन: गीता परिवार - रचनात्मक लेखन विभाग

हर घर गीता, हर कर गीता!
Let's come together with the motto of Geeta Pariwar, and gift our Geeta Classes to all our Family, friends & acquaintances

https://gift.learngeeta.com/

गीता परिवार ने एक नवीन पहल की है। अब आप पूर्व में सञ्चालित हुए सभी विवेचनों कि यूट्यूब विडियो एवं पीडीऍफ़ को देख एवं पढ़ सकते हैं। कृपया नीचे दी गयी लिंक का उपयोग करे।

https://vivechan.learngeeta.com/